समकालीन युग में भक्ति प्रवाह: धार्मिक चेतना की उत्कृष्टि तथा मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के तथ्यों का मूल्यांकन...

संविधानिक रूप से धर्मनिष्पक्ष भारत को प्रायः धर्म की कसौटी पर ही स्वयं को सिद्ध करना पड़ता है। यहां धार्मिक घटनाक्रम प्रायः चमत्कारों से जुड़े होते हैं और विज्ञान उन्हीं घटनाओं को मिराक्युलस या चमत्कारी मानता है जिसका तर्क वह नहीं दे पाता। बड़ी विडंबना यह है की यहां घटित एक एक धार्मिक घटनाक्रम का लेखा जोखा या तर्क वितर्क प्रायः कोई न कोई मांगने चले आते हैं। भगवान क्या हम मानवों की परीक्षा लेंगे यहां तो हम ही उनका रिटेस्ट लिए जा रहे हैं। समकालीन दौड़ में हम एक नवीन भक्ति प्रवाह की अनुभूति करते हैं जो तेजी से अपने रंग में सबको रंगी चले जा रही है। अवश्य ही तकनीकी विकास इस तेजी का बहुत बड़ा कारण है मगर इस भाव की सार्थकता तथा इसकी सत्यता कहां तक वैध है? इतिहास में ऐसी उमड़ती भक्ति का प्रवाह पहले भी हुआ है परंतु तत्कालीन परिस्थितियां कुछ और थी। यदि हम तत्कालीन तथा समकालीन परिस्थिति का उचित मूल्यांकन करते हैं तब ही हम इस नवप्रवाहित भाव के वैधता या अवैधता पर कुछ निष्कर्ष तक पहुंच पाएंगे।

हमारे हिंदी साहित्य में यदि स्वर्णकाल किसी काल को कहा गया है तो वह है उत्तर मध्यकाल जिसे हम भक्तिकाल के नाम से जानते हैं। 1375 से 1700 संवत तक का वह समय स्वर्णर्युगी रहा है। हमारे ईश्वर के प्रति हमारी भक्ति भावना की काव्यगत अभिव्यक्ति को हमारे आचार्यों ने स्वर्णकाल का सम्मान दिया है। भक्तिकाल के इस समय में हम हमारे परमात्मा को केवल भगवान रूप में नहीं देखते हैं... हमने भगवान के विभिन्न रूपों के दर्शन किए हैं.... कबीर ने हमें उनके गुरु रूप के दर्शन दिए तो उन्हीं भगवान को सूर ने पुत्र रूप में गढ़ा, वही मीरा के सर्वस्व बने और गोपियों के प्रेमी भी वही कहलाए। उन्हीं ने गीता के उपदेश दिए और उन्होंने ही रावण का वध किया। उन्होंने ही प्रेम की रासलीलाएं की और विरह की पीड़ा में भी उन्होंने ही अश्रु बहाए हैं... उनके स्वरूप भले बदल गए परंतु वे सदा एकरूप ही रहे। मन के भाव जितने अधिक गंभीर एवं प्रबल होते हैं, रचित काव्य से अभिव्यक्त भाव भी उतने ही प्रभावशाली होते हैं। अवश्य ही उन दिनों कुछ न कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुई होंगी जिससे भक्ति का ऐसा विस्तृत संचार हुआ जिसके रंग में सभी रंग गए.... इस घटना को विशेषज्ञों ने भक्ति आंदोलन का नाम दिया।

जॉर्ज ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन पर विचार करते हुए लिखा था कि इसका आगमन "बिजली की चमक के समान अचानक" हुआ था। परंतु विचारणीय तथ्य ये है कि इतना विस्तृत घटनाक्रम क्या "अचानक" हो सकता है? वह भी उस काल में जहां अपने संदेश एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पहुंचने में महीनों बीत जाते थे! क्या एक साथ, "अचानक" ही भारत जैसे घनी आबादी वाले देश में ऐसा संभव है की लाखों के हृदय में एक ही भाव का संचार एक ही समय में उत्पन्न हुआ हो? अगर हम तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर जब गौर करते हैं तब पाते हैं की भक्ति काल का विस्तार मुख्य रूप से तुगलक वंश से लेकर मुगल वंश के बादशाह शाहजहाँ के शासन काल तक है। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध

 ISSN:2583-8849

में पश्चिमोत्तर मार्ग से तुर्कों का भारत पर आक्रमण हुआ। राजपूत राजाओं की पारस्परिक फूट तथा शत्रुता के परिणामस्वरूप पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी के हाथों तथा जयचंद कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा मारे जाने के पश्चात् दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई। अर्थात दिल्ली सल्तनत का इतिहास मुहम्मद गौरी के द्वारा भारत पर आक्रमण से शुरू होता है।

सन् 1206-1290 ई. तक दिल्ली-सल्तनत का इतिहास उतार-चढ़ाव का रहा। 1281 ई. में बलवन की मृत्यु के बाद फिर से अराजकता फैल गई। यहीं से खिलजी वंश की शुरुआत हुई। जलालुद्दीन खिलजी का शासन काल छह वर्ष का रहा। इस अल्प शासन काल में ही उसने बलवन के कठोर शासन में नरमी लाने का प्रयास किया। उसने राज्य का आधार 'प्रजा का समर्थन' माना। उसकी धारणा के अनुसार चूंकि भारत की अधिकांश जनता हिंदू थी इसलिए सही अर्थ में यहाँ कोई इस्लामी राज्य नहीं हो सकता था। सहिष्णुता और सरल दंड-विधान की नीति से उसने स्थानीय शासक वर्ग का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की। अगला शासक अलाउद्दीन खिलजी बना। उसने जलालुद्दीन की नीति को बिलकुल बदल डाला। जिन्होंने उसका विरोध करने का साहस किया उन्हें कठोर दंड दिया गया। अलाउद्दीन ने बड़े पैमाने पर अपने विरोधियों की हत्या की। उसने स्थानीय शासकों को अपने विरुद्ध षड्यंत्र रचने पर रोक लगाने के लिए कई कानून बनाए।

अलाउद्दीन के मरणोपरांत गयासुद्दीन तुगलक विद्रोह के बाद दिल्ली-सल्तनत की गद्दी पर बैठा। गयासुद्दीन ने एक नए वंश की स्थापना की जिसका नाम तुगलक वंश था। तुगलक वंश का शासन 1320-1412 ई. तक रहा। आरंभिक दो शासकों का शासन लगभग संपूर्ण भारत पर था। फिरोज के मरने के बाद दिल्ली-सल्तनत विघटित हो गयी। यद्यपि तुगलक शासकों ने सन् 1412 ई. तक शासन किया तथापि सन् 1398 ई. में तैमूर द्वारा दिल्ली पर आक्रमण को तुगलक साम्राज्य का अंत माना गया है।

दिल्ली सल्तनत के पतन के बाद शर्की सुलतानों ने एक बड़े भू-खंड पर कानून और व्यवस्था को बनाए रखा। इस बीच कुछ समय के लिए दिल्ली पर सैयद वंश का और फिर 1451 ई. में अफगान सरदार बहलोल लोदी का शासन स्थापित हुआ। सबसे महत्वपूर्ण लोदी सुलतान सिकन्दर लोदी (1489-1517 ई.) था। अपने विजय अभियान के दौरान 1506 ई. में उसने आगरा शहर की नींव डाली जो कालान्तर में एक बड़े शहर के रूप में विकसित हुआ। आगे चलकर आगरा लोदियों की दूसरी राजधानी भी बनी। 1517 ई. में सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा। इब्राहीम के विशाल साम्राज्य स्थापित करने के प्रयत्न से अफगान और राजपूत दोनों उसके दुश्मन बन गए। इस कारण दौलत खाँ लोदी और राणा सांगा के निमंत्रण पर बाबर भारत की ओर आया।

1525 ई. में जब बाबर पेशावर में था उसे खबर मिली कि दौलत खाँ लोदी ने अपना पलड़ा बदल दिया है, तब बाबर और दौलत खाँ के बीच युद्ध हुआ। दौलत खाँ पराजित हुआ और पंजाब पर बाबर का अधिकार हो गया। पंजाब पर विजय प्राप्त करने के बाद 20 अप्रैल 1526 ई. में बाबर की इब्राहीम लोदी से पानीपत की ऐतिहासिक लड़ाई हुई। इब्राहीम लोदी मारा गया। इस तरह अगला युद्ध राणा सांगा के साथ 1527 ई. में

ISSN:2583-8849

खनवा में हुआ। सांगा भी पराजित हुआ। उसकी मृत्यु के साथ ही बाबर के साम्राज्य का विस्तार होना आरंभ हो गया... बाबर के बाद आए अन्य सभी शाशकों– हुमायूं, शेरशाह, अकबर, जहांगीर तथा शाहजहां– के शासनकाल में राज्य मूलत: धर्मनिरपेक्ष, सामाजिक विषयों में उदार तथा सांस्कृतिक एकता को प्रोत्साहित करने वाला बन गया। शाहजहाँ के अंत के साथ ही हिंदी साहित्य के भक्ति काल की भी समाप्ति हो गई।

तुर्कों का आगमन तथा दिल्ली सल्तनत की स्थापना, विकास और खलबली दोनों साथ लेकर आया। विजय के आरंभिक चरण में अनेक शहरों को लूटा गया और मंदिरों को तोड़ा गया। कई मंदिरों को तोड़कर मस्जिद में परिवर्तित कर दिया गया। साम्राज्य के विस्तार के साथ यह प्रक्रिया कई चरणों में जारी रही। किंतु जैसे ही कोई प्रदेश जीत लिया गया वैसे ही शांति और विकास की प्रक्रिया आरंभ हो गई। भारत में जमने के बाद तुर्कों ने अपने मस्जिदों का निर्माण किया। हिंदुओं और जैनियों आदि के पूजास्थल के प्रति उनकी नीति मुस्लिम कानून (शरीअत) पर आधारित थी जो अन्य धर्मों के नए पूजा स्थलों के निर्माण की इजाजत नहीं देता फिर भी गाँव में जहाँ इस्लाम का प्रचार नहीं था, मंदिरों के निर्माण पर कोई प्रतिबंध नहीं था। किंतु युद्ध काल में इस उदार नीति का पालन नहीं किया जाता था।

साधारणत: इस युग में इस्लाम स्वीकार करने के लिए बल का प्रयोग नहीं किया जाता था। धर्म परिवर्तन कर इस्लाम स्वीकार करने का कारण राजनीति और आर्थिक लाभ की आशा अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने की ललक थी। कभी-कभी जब कोई प्रसिद्ध शासक या जनजाति का प्रधान धर्म परिवर्तन करता था तो उसकी प्रजा उसका अनुकरण करती थी। मुसलमान शासकों ने अनुभव किया था कि हिंदुओं में धार्मिक विश्वास इतना दृढ़ है कि बल प्रयोग द्वारा उसे नष्ट नहीं किया जा सकता था। मुसलमानों की उस समय कम जनसंख्या इसका प्रमाण है।

हिंदू धर्म का इस्लाम से संपर्क तुर्कों के आने से बहुत पहले आरंभ हो चुका था। तुर्कों के भारत आगमन के बाद यह प्रक्रिया तेज हो गई। हिंदू और मुसलमान दोनों में कुछ कट्टर लोग धर्मांधता फैला रहे थे। वे लोग दोनों धर्मों के बीच आभासित होने वाली परस्पर विरोधी प्रकृति को रेखांकित कर रहे थे। इस सबके बावजूद पारस्परिक सामंजस्य और मेल-मिलाप की धीमी प्रक्रिया आरंभ हुई। यह प्रक्रिया वास्तुकला, साहित्य, संगीत, आदि क्षेत्रों में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रही थी। आगे चलकर यह प्रक्रिया धर्म के क्षेत्र में भक्ति-आंदोलन और सूफीवाद के रूप में दिखाई देने लगी। बारहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक चली इस लम्बी प्रक्रिया को जब कोई विद्वान "अचानक घटित घटना" की संज्ञा दे जाता है तब आश्चर्य होता है। आवश्यक है की अपने कथन देने से पूर्व हमें तथ्यों का पूर्ण ज्ञान हो।

खैर यह तो हुई भक्ति आंदोलन की तत्कालीन परिस्थितियों पर चर्चा... जब हम समकालीन स्थितियों पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं की इन दिनों पुनः भक्ति की एक लहर का प्रवाह हो रहा है। पांच शताब्दी के तत्कालीन समय से यदि हम आज के पांच दशकों कि तुलना करने बैठे तो अवश्य ही लगेगा की जैसे यह अचानक ही हो रहा है। अभी कल तक उदारतावाद (लिब्रलिज्म) के नारे लगाने वाली हमारी वोक युवा पीढ़ी अचानक ही "ऑर्थोडॉक्स थॉट्स एंड लिविंग

ISSN:2583-8849

स्टैंडर्ड्स" को मानने वाली प्रतीत हो रही है... आज उन्हें स्वयं द्वारा कथित पूर्व के शब्द विरोधाभास के स्वर लग रहे हैं। इंस्टाग्राम के रील्स तथा यूट्यूब के शॉर्ट्स इनके ज्ञान का आधार है और यह उसी ज्ञान की अधजल गगरी को यहां वहां छलकाए जा रहे हैं। रुझान के दौर के ये भक्त ही हैं जो दिखावे के लिए कभी त्रिपुंद्रधारी तो कभी ऊर्ध्व पुंद्रधारी बने घूमते हैं। हास्य का विषय यह है की उन्हें लगाने वाले आधे लोगों को यह भी नहीं पता की किस तिलक को क्या कहते हैं। रुझान यानी ट्रेंड के भूखी इस पीढ़ी का कोई अपना शुद्ध पक्ष नहीं रहता जिसपर यह दृढ़ रह सके। यहां रीढ़ की हड्डी एक पतंग की तरह है... जिस ओर हवा का बहाव उस ओर इनकी उड़ान। युवाओं को हमारे देश में भविष्य के स्तंभ के रूप में देखा जाता है और इस स्तंभ की मजबूती का आधार है दृढ़ सिद्धांत। एक सिद्धांतहीन व्यक्ति न अपना भविष्य सवार सकता है ना ही अपने देश का। इन पाखंडी सहयोगियों से तो अधिक भले वह असल विद्रोही हैं जिनके निश्चय पर कम से कम सामने वाला भरोसा कर सकता है।

एक वह काल था जिसे अपने भाव के कुशल एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति के कारण स्वर्णकाल की संज्ञा दी गई थी और एक आज का काल है जिसके भाव के असल होने पर भी संदेह है। जो लोग सदा से अपने धर्म को मानते तथा उसका प्रचार प्रसार करते आ रहे हैं उन्हें रुझानों के लहरों में अपनी नौका को पार करवाने की ना आवश्यकता होती है ना ही ललक। और यही भाव वैध की श्रेणी में आता है। क्योंकि यही भाव सत्य भी है और सार्थक भी। कुछ लोगों का अवश्य ही यह मानना है की ट्रेंड के लिए ही सही मगर कम से कम सनातन धर्म का प्रचार तो हो रहा है। उन लोगों को याद दिलाने की आवश्यकता है की जिस सनातन धर्म के आदि अंत का हमें ज्ञान ही नहीं हम उसके प्रचार प्रसार में क्या ही योगदान दे सकते हैं। और उससे भी बढ़कर बात यह है की क्या ऐसे स्वयंभू सनातन धर्म को किसी प्रकार की प्रचार या प्रसार की आवश्यकता है जो वर्षों से अपने बलबूते सशक्त रूप से खड़ा हो? वह शाश्वत है। किसी ट्रेंड का मोहताज नहीं। अच्छी बात है की समय के साथ भले ही तकनीकी उपकरणों के ही मध्यम से हमारे सनातन धर्म के प्रति जिज्ञासा एवं जागरूकता बढ़ रही है मगर कोई इस जिज्ञासा का अनुचित लाभ न उठाए तथा इस जागरूकता को भ्रम में न परिवर्तित कर दे यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी भी हमारी ही बनती है। और यह तभी संभव होगा जब हमें तथ्यों एवं घटनाओं की विस्तृत एवं सम्पूर्ण जानकारी हो। भले ही हम कम जाने मगर आधा न जाने। और उस ज्ञान या उस जानकारी के बाद हमारे मन में जिस भाव की अनुभूति हम करेंगे वही भाव वास्तविक में हमारे सिद्धांतों का आधार बनेगा। हमारी यह उत्सुकता एवं जिज्ञासा क्षणिक है या शाश्वत यह हमारे ऊपर निर्भर करता है। बस वह वास्तविक होना चाहिए और वैध होना चाहिए ताकि व्यर्थ के प्रश्नचिन्हों का सामना हमें ना करना पड़े।

श्रेया शाण्डिल्य

परास्नातक (हिन्दी), द्वितीय वर्ष

वसन्त कन्या महाविद्यालय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय.